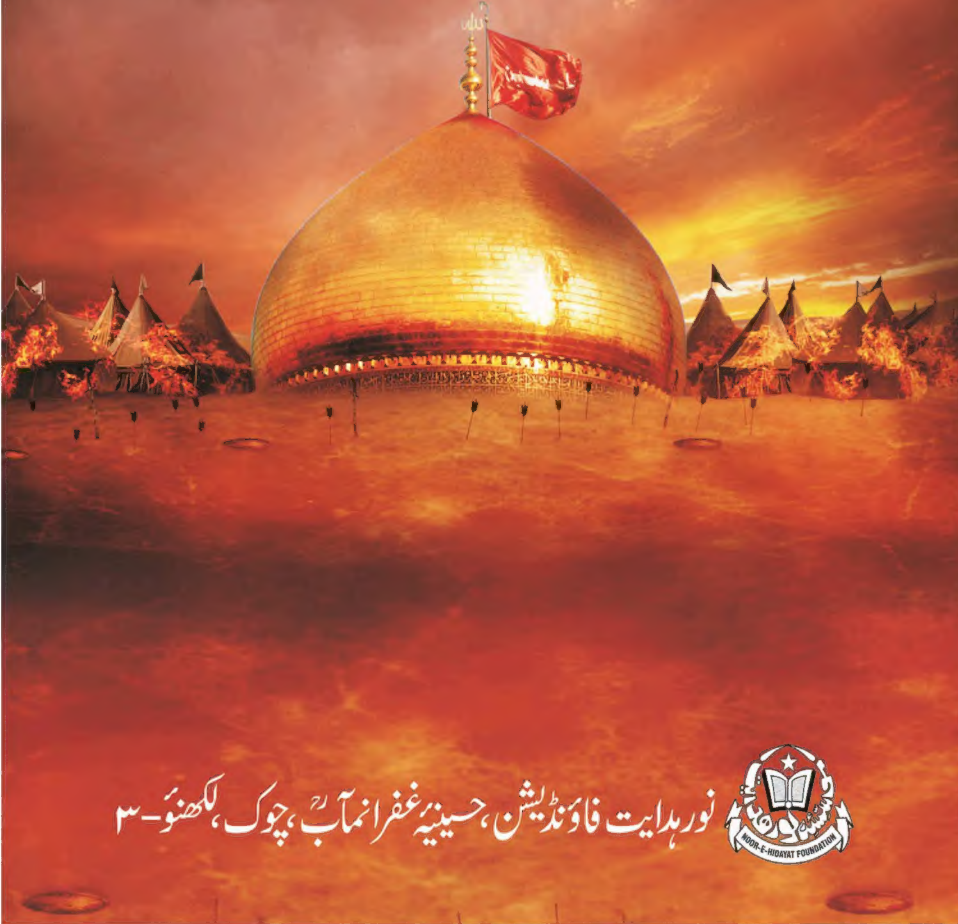
ستمبر ۲۰۱۳ء

ماہنامہ شعاع عمل لکھنؤ

قَالَ اللّٰهُ تَبَارَكَ وَتَعَالٰى قَدْ جَاءَ كُمْ مِنَ اللّٰهِ نُوْرٌ وَكِتَابٌ مُبِيْنٌ

بے شک تمہارے پاس اللہ کی طرف سے نور آیا ہے اور روشن کتاب





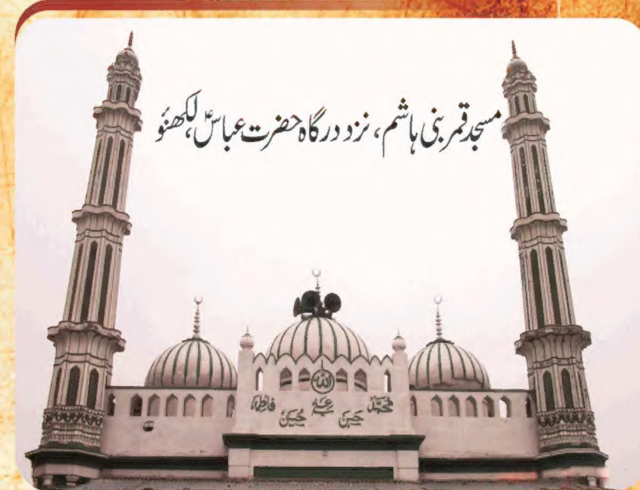
نور ہدایت فاؤنڈیشن، حسینیہ غفرانمآبؒ، چوک، لکھنؤ-۳

R.N.I. No. UPBIL/2004/13526
Postel Regd.No. SSP/LW/NP-75/2011-13 Dispatch Date: 2 & 6 of Every Month

SHUA-E-AMAL
Lucknow

शुआ-ए-अमल
हिन्दी, उर्दू मासिक पत्रिका लखनऊ

मचजमउइमत २०१३





NOOR-E-HIDAYAT FOUNDATION
Imambara Ghufran Maab, Chowk, Lucknow-3 (U.P.) INDIA, Ph.:0522-2252230

R.N.I. No.
UPBIL/2004/13526



Postal Regd. No.
SSP/LW/NP-75/2008-10



WEBSITE:
www.noorehidayatfoundation.com
www.al-ijtihaad.com
E_mail:
noorehidayat@yahoo.com
noorehidayat@gmail.com

वार्षिक अंशदान

1- यूरोप, अमरीका, कनाडाः
80 अमरीकी डालर
2- ख़लीजी मुमालिकः
60 अमरीकी डालर
3- एशिया, पाकिस्तानः
40 अमरीकी डालर
4- पाकिस्तान ज़मीनी डाकः
20 अमरीकी डालर

लाइफ़ मेम्बरशिपः 4000/-

विषय सूची

सितम्बर 2013ई०

ज़ीक़ादा व ज़िलहिज्जा 1434हि०

ज़िन्दगी का सिस्टम

y§kd %आयतुल्लाहिल उज़मा सय्यदुल उलमा मौलाना सै0 अली नक़ी नक़वी
क़िस्त : 16
lEiknu %नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन

याद रखिये कि इससे भी सिर्फ़ नमाज़ की ज़ाहिरी हालत पूरी होती है मगर नमाज़ की रूह इसके अलावा है। अगर कोई बिल्कुल इसी तरह से पूरे तौर पर नमाज़ पड़े मगर लिल्लाहियत (अल्लाह के लिए होने) का जज़्बा न हो और खुदा की इताअत (भक्ति) का ख़्याल न पाया जाता हो बल्कि लोगों को दिखाने के लिए पढ़ रहा हो तो वह नमाज़ तनिक भी क़ीमत नहीं रखती और अल्लाह की बारगाह में क़ुबूल होने के क़ाबिल नहीं है। नमाज़ में रूह, इबादत की अहमियत के एहसास से पैदा होती है और परमेश्वर अल्लाह की बारगाह की बड़ाई–ऊंचाई (महत्ता) के ख़्याल और दिल की लगन से जिस का नतीजा सच्चा खुज़ू (अपने को घटिया समझना) और जिसका ताल्लुक़ दिल से है। मासूम इमामों (अ) ने इस एहसास को भी जगाना चाहा, कभी ये इरशाद फरमाया ''जब नमाज़ के लिए खड़े हो तो यक़ीन रखो कि तुम खुदा के सामने हो, तुम उसे नहीं देखते हो तो यक़ीन जानों कि वह तुम्हे देखता है''।

अगर अ़मल के वक़्त ये एहसास बाक़ी रहे कि वह खुदा के सामने है और ख़ुदा उसे देख रहा है तो क्या उसके दिल में इधर–उधर के ख़्याल पैदा हो सकते हैं और नज़र इधर उधर मुड़ सकती है। जितने गुनाह इन्सान करता है सिर्फ़ इसलिए कि वह इस बात का ख़्याल बाक़ी नहीं रखता कि ख़ुदा सामने है और ये कि ख़ुदा उसे देख रहा है, अगर ये एहसास बाक़ी रहे तो ये नहीं हो सकता कि इनसान गुनाह करे या इबादत/भक्ति को बेदिली के साथ पूरा करे। एक जगह इरर्शाद हुआ है –'' जब नमाज़ पढ़ो तो ये ख़्याल करो कि ये आख़िरी नमाज़ है, हो सकता है इसके बाद पढ़ना नसीब न हो। ''हक़ीक़त ये है कि इन्सान की ज़िन्दगी का भरोसा नहीं। किसे मालूम कि जो सांस आ रही है वह आख़िरी नहीं है तो फिर दूसरी नमाज़ तक ज़िन्दा रहने का इत्मेनान किसे हो सकता है अगर ये ख़्याल नमाज़ के वक़्त पैदा हो जाय तो बेशक नमाज़ उस तरह होगी जिस तरह इन्सान को पढ़ना चाहिए।

ek wbekeksa ¼v0½ vkSj vgys cSr ¼v0½ dsf'k;ksa dhuekt+

जिस तरह ज़बान से इमामों (अ) ने लोगों को नमाज़ में खुशू व खुजू पैदा करने को कहा उसी तरह अपने कर्म से ऐसे ही नमूने सामने किये और होना भी यही चाहिये था क्यों कि उनका मक़सद दुनिया को इल्म ज्ञान और कर्म में पूरे दर्जे पर पहुँचाना था इसलिए खुद उन्हें ज़िन्दगी के हर मैदान में आखिरी हद पर होना ज़रूरी था। इमाम ज़ैनुल आबिदीन (अ0) की ये हालत होती थी कि '' जब आप (अ) नमाज़ के लिए खड़े होते थे तो आप (अ) के चेहरे का रंग बदल जाता था और जब सजदा करते थे तो तब तक सर नहीं उठाते थे जब तक पसीने में भीग नहीं जाते थे, ''चूँकि नमाज़ की हालत में सबसे ऊंचा दर्जा सजदे का है इसलिए ये मासूम इमाम (अ) सबसे ज़्यादा देर तक सजदे में रहते थे।

एक रवायत में है '' इमाम ज़ैनुल आबिदीन (अ) जब नमाज़ के लिए खड़े होते थे तो ये मालूम होता था कि एक पेड़ का तना है जो हवा चलने के बिना ज़रा भी हिलता नहीं''।

अबान बिन तग़लिब कहते हैं–'' मैने इमाम ज़ैनुल आ़बिदीन (अ) को देखा कि जब नमाज़ के लिए खड़े होते थे तो आप के असली रंग पर दूसरा रंग छा जाता था।''

इमाम जाफ़र सादिक़ (अ) ने उसकी वजह बताते हुए फ़रमाया–

''इमाम ज़ैनुल आबिदीन (अ) जानते थे कि वह किसके सामने खड़े हो रहे हैं।''

अबू हम्ज़ा सुमाली का बयान है–

''मैने इमाम ज़ैनुल आबदीन (अ) को देखा कि आप नमाज़ पढ़ रहे हैं और इस हालत में आपकी चादर आपके कन्धे से गिर गई, आपने उसको सही नहीं किया यहाँ तक कि अपनी नमाज़ को ख़त्म किया। मैने इसके बारे में पूछा तो फ़रमाया कि तुम जानते हो मैं किसके सामने था!!''

इमामे हसन (अ0) के बारे में भी आया है कि जब आप वुज़ू कर चुके होते थे तो आपके चेहरे का रंग बदल जाता था, इसकी वजह पूछी गयी तो फ़रमाया–

''जो आदमी अर्श के मालिक के दरबार में हाज़िर हो उसका रंग बदल ही जाना चाहिए,'' और जब आप नमाज़ के लिए खड़े होते थे तो हाथों–पैरों में कप्कपाहट होती थी। मासूम इमाम (अ0) के कहने और करके बताने ही का असर था कि उस ज़माने में नमाज़ में खुज़ू व खुशू पाया जाना अहलेबैत के शियों की ख़ास बात समझी जाती थी। इसका एक ऐतिहासिक (Historical) सबूत जो मेरे सामने है, जो अहलेबैत (अ0) के एक दुश्मन की ज़बान से है और जिसको एक पुराने (इतिहासिकार) (Historian) अबू हनीफ़ा दीनावरी ने अपनी किताब 'अख़बारतुल अहवाल में बयान किया है। इस मौक़े पर जब हज़रत मुस्लिम–बिन–अक़ील इमाम हुसैन (अ0) की तरफ़ से नुमाइन्दे/प्रतिनिधि (Representative) बनकर कूफ़ा आए हैं और आपने छुपे छुपे कूफ़ा वालों से इमाम हुसैन (अ0) के साथ वफ़ादारी का वादा लेना शुरू किया और इब्ने ज़्याद गवर्नर होकर कूफ़ा आया तो उसने हज़रत मुस्लिम (अ0) की जासूसी शुरू की और अपने एक गुलाम 'मो'कुल' को जो शाम का रहने वाला था उसे इस काम पर लगाया। उसे एक थैली में तीन दिरहम दिए और कहा मुस्लिम का पता लगाओ। मो'कुल गया और समझ मे न आता था कि किस तरह जनाबे मुस्लिम का पता लगाए। इसी सोंच में वह सबसे बड़ी मस्जिद में आया और उसने देखा कि मस्जिद के एक खम्बे के पास एक बुज़ुर्ग नमाज़ में मशगूल हैं और बहुत सी नमाज़े उन्होंने पढ़ी हैं। इतिहास के शब्द हैं, ''उसने अपने दिल में कहा कि यह शिया लोग नमाज़ बहुत पढ़ते हैं और मेरा ख़्याल है कि यह आदमी उन्हीं में से है, इसी ख़याल पर वह आगे बढ़ा और उस ने सुराग़ पता लगाने में कामयाबी पा ली, वह बुज़ुर्ग मुस्लिम बिन औसजा थे, जो हज़रत मुस्लिम बिन अक़ील की तरफ़ से लोगों से बैअ़त लेते थे।

आपने देखा, कि ज़्यादा नमाज़ पढ़ना और इबादत (भक्ति) उस ज़माने में शीया फ़िरक़े (सम्प्रदाय) की पहचान थी। अफ़सोस है कि आज हमारे फ़िरक़े के बहुत से लोग नमाज़ की तरफ़ ज़्यादा तवज्जो नहीं देते हैं और उसे अहमियत की निगाह से नहीं देखते।

rdeljkr &, &bLr $jHg ¼q esa/Yylgq/Dcj dguk½

नमाज़ से पहले सात तक़बीरें (सात बार अल्लाहु अक्बर कहना) कहने का हुक्म दिया गया है जिनमें से एक तकबीरतुल इहराम (एक बार अल्लाहु अक्बर कहना जो वाजिब है) होगी और छः तक़बीरें मुस्तहब (सुन्नत), यह इसी लिए है कि किसी एक तकबीर में शायद दिल पर असर पड़ जाए और नमाज़ में दिल लग जाए। इसी लिए बीच में ऐसी दुआएँ रखी गई हैं जिनका इन्सान के दिल पर असर हो सकता है। नमाज़ शुरू करना चाहे तो हाथों को ऊंचा करे और तीन मरतबा तकबीर कहे, फिर यह दुआ पढ़े–'' अल्ला–हुम्–म अन्तल् मलिकुल् हक़्कुल् मुबीनु ला इला–ह इल्लल्ला–ह इल्ला अन्–त सुब्हा–न–क इन्नी ज़लम्तु नफ्सी फ़ग़्फिर्ली ज़ंबी इन्–नहु ला यग़्फ़िरूज़्–जुनू–ब इल्ला अन्–त।

ए अल्लाह!! तू खुला हुआ सच्चा बादशाह (साफ़ सत्य–ईश्वर) है। तेरे अलावा कोईभगवान नहीं है। (तेरी मेहिमा) तू पाक पवित्र है। मैंने अपनी जान पर अन्याय किया है तो फिर तू मेरे गुनाह पाप को ढांप ले (क्षमा कर दे) क्योंकि पापों को क्षमा करने वाला तेरे अलावा कोई नहीं है।

इन थोड़े से (शब्दो) में खुदा की हम्द/सन्सुति और तौहीद एकेश्वरवाद है और उसके साथ तसबीह (खुदा पवित्र पाक होने का बयान) फिर अपने गुनाहों का मान लेना (Admit) करना और तौबा– अस्तग़फ़ार है। वह बारगाह के दरवाज़े पर आता है और कहता है ''ख़ुदा वन्दा तू है बादशाह (ईश्वर प्रभु)।'' इन्सान की मानसिकता (Mentality) यह है कि वह हुकूमत

की तरफ़ झुकता है मगर हर हुकूमत से बड़ी खुदा की हुकूमत है, इसलिए उसकी हुकूमत को याद करके इन्सान महानता का एहसास पैदा करता है फिर ख़्याल करता है कि दुनिया में बादशाह तो बहुत हैं फिर खुदा की ख़ासियत क्या हुई? तो कहता है "*अल्हक़*" यानि दूसरे अगर बादशाह हैं तो बनाए हुए हैं , हक़ीक़ी बादशाह तो सिर्फ़ तू ही है। "*अल्मुबीन*" यानि तेरी हुकूमत के लिए किसी सुबूत के खोजने की ज़रूरत नहीं। उसकी निशानियां खुली और ज़ाहिर हैं। इस राजसत्ता और हुकूमत के साथ यह एहसास होता है कि फिर बहुत ही सम्मान और भक्ति (इबादत) का पात्र भी वही है, इस लिए कहता है "*लाइला–ह इल्ला अन्–त*", कोई सच्चा भगवान नहीं, सिवाए तेरे। इस तरह खुदा की हम्द (संसुति) के बाद तौहीद (एकेश्वरवाद) की बात पूरी हुई है। "*सुबहा–न–क* "यानि" पाक है तेरी ज़ात" इसमें उसकी ज़ात को सारी कमियों से दूर कहा गया और उसकी ज़ात के पाक पवित्र होने का एलान किया। इस तरह अपने पैदा करने वाले के पूरी तरह की परिपूर्णता होने का मानना था कि अपनी कमियों और बुराईयों पर नज़र गई और कमियों का एहसास हुआ तो फ़ौरन कह उठा "*इन्नी ज़–लम्–तु नफ़्सी*" ऐ खुदा! मैनें अपने आप पर बड़ा अन्याय किया यानि गुनाहों को करता रहा, क्यों कि कुरान मजीद में गुनाह करने वालों को ज़ालिम (अन्यायी) की उपाधि दी गयी है। कहा गया है– "जो लोग खुदा की बनायी हुई हदों से आगे बढ़ते हैं वही ज़ालिम हैं।" गुनाह के एहसास के बाद इन्सान इधर–उधर नज़र डालता है तो कोई सहारा ख़ुदा के अलावा नज़र नहीं आता। यानि ऐ ख़ुदा अब मेरे गुनाह को माफ़ कर दे निश्चय तेरे अलावा कोई नहीं है जो गुनाहों को माफ़ कर सके।

उसके बाद फिर दो बार 'अल्लाहु अकबर' कहे और फिर कहेः

लब्बै–क व सादै–क वल् ख़ै–र फ़ी यदै–क वश्शर्रू लै–स इलै–क वल् मह्दीयु मन् हदै–त ला मल्जा मिन्–क इल्ला इलै–क सुब्हा–न–क व हनानै–क तबारक–त व त–आलै–त सुब्हा–न–क रब्बल् बैत्।

यानि" हाज़िर हूँ उपस्थित हूँ" ये *लब्बैक* की आवाज़ किसी छिपे हुए बुलावे का पता दे रही है, मालूम होता है कि जब तक पहली दुआ में गुनाहों से तौबा किया है उस वक़्त तो बन्दा इस क़ाबिल ही नहीं था कि उसको खुदा के दरबार में हाज़िर होने की इजाज़त मिले मगर जब उसने गुनाहों का इक़रार (कुबूल) कर लिया और तौबा (पछतावा) कर ली; याद रखिए कि ख़ुदा का दरबार दुनिया के बदशाहों और हाकिमों का दरबार नहीं जहाँ दरख़ासत को मनज़ूर होने के लिए लम्बा वक़्त लगता है बल्कि यह वह दरबार है जहाँ सच्चे दिल से तौबा का ख़्याल आने के साथ ही गुनाह की माफ़ी का पत्र मिल जाता है। पहली तकबीरों के बाद भी जब खुदा की हम्द / तारीफ़ के बाद यह कहा कि मैं मुजरिम हूँ, पालने वाले मेरे गुनाह को माफ़ कर दे, तेरे अलावा कौन है जो मुझे माफ़ी दे सके। अगर यह बोल सही एहसास व एक़रार के साथ कहे गए हों तो यही गुनाह की माफ़ी के लिए काफ़ी हैं। अब जैसे ये बन्दा इस क़ाबिल हुआ कि खुदा के यहां में इसको हाज़िर होने के लिए आवाज़ दी जाए। ग़ैब की आवाज़ इसके दिल के कानों में आती है और यह कहता है – "*लब्बैक*" यानि "हाज़िर हूँ और मेरी खुशक़िस्मती तेरी तवज्जो के साथ जुड़ी है। और भलाई तेरे क़ब्ज़े में है और बुराई का तेरी तरफ़ गुज़र नहीं और सही रास्ते पर वही है जिसको तू रास्ता दिखाए।"

मतलब यह मालूम होता है कि आने वाली ज़िन्दगी (भविष्य) में मेरा सही रास्ते पर टिका रहना तेरी ही हिदायत (मार्ग दर्शन) पर निर्भर है। "तुझसे भागने की कोई जगह नहीं अलावा तेरे" यानि इन्सान तुझसे भाग कर जाए तो कहीं उसका ठिकाना नहीं, आख़िरकार उसे तेरी ही तरफ़ आना पड़ेगा। "पाक है तेरी ज़ात और मेहरबान है तू, बरकत वाला है और तेरी ज़ात बुलन्द है, तू कमियों और बुराईयों से पाक और परे है, ऐ खानए काबा के पालने वाले।"

अब जैसे बन्दा खुदा के दरबार में हाज़िर हो गया और उसके चेहरे के सामने पालनहार का तेज़ और ऐश्वर्य आ गया वह दो बार और 'अल्लाहु अक्बर' कहता है और निवेदन करता है" वज्जहतु वज्हिय लिल्लज़ी फ़–त–रस्समावाति वल् अर्–ज़ आलिमुल् ग़ैबि वश्शहादति हनीफ़न् तुस्लिमन् व मा अना मिनल् मुश्रिकीन इन्–न सलाती व नुसुकी व मह्या–य व

ममाती लिल्लाहि रब्बिल् आ–लमी–न ला शरी–क लहु व बिज़ालि–क उमिर्तु व अना मिनल् मुस्लिमीन'' मैने मुंह उसकी ओर किया जिसने आसमानों और ज़मीन को पैदा किया और वह सामने की ओर गैब (अदृश्य) की बातों को जानता है। मैं उसके लिए जी लगा के सर झुकाता हूँ और किसी को उसके साथ साझी नहीं करता, मेरी नमाज़ और मेरी भक्ति और मेरा जीना मरना सब अल्लाह के लिए है जो सारे संसारों का पालनहार है, कोई उसका साझी नहीं है और इसी का मुझे हुक्म हुआ है और उसके आगे समर्पण करने वाला मैं हूँ।''

ये हैं वह बोल जिन से नमाज़ की शुरूआत होती है। सच बतायें कि अगर इन बातों का इन्सान के दिल पर असर पड़ जाय तो क्या हो भी सकता है कि नमाज़ में आदमी का जी न लगे या वह इधर–उधर के ख़्यालों से अपने मन को बेकल रखे। आदमी को छूट है कि इन्हीं तकबीरों में से जिसको चाहे तकबीरतुल एहराम (नियत के बाद एक बार अल्लाहु अक्बर कहना, जो वाजिब अनिवार्य है) के इरादे से कहे, इस दुआए तौबा *(वज्जहतु वज्हिय)* के बाद *'अऊज़ू बिल्ला–हिस् समी'उल अलीमि मिनश्शैतानिर्रजीम'* के साथ सूरह हम्द' शुरू करें जो नमाज़ में फर्ज़ और ज़रूरी (वाजिब) है इसके अलावा तकबीरतुल एहराम छोड़ के सभी तकबीरें (अल्लाहु अक्बर) और दुआएँ मुस्तहब हैं, उनका पढ़ना वाजिब नहीं है।

l jkgEn

नमाज़ में सूर–ए–'हम्द' को बड़ी अहमियत है। कहा गया है ''नमाज़ बिना *फ़ातेहतिल किताब* यानी सूरे हम्द के नहीं होती।'' यहाँ तक कि नाफ़िला (सुन्नत) नमाज़ में दूसरा सूरह छोड़ देना जायज़ है मगर सूरा हम्द उन नमाज़ों में भी ज़रूरी है। और वाजिबी नमाज़ में दूसरे सूरों में कोई सूरे तय (निश्चित) नहीं है मगर सूरे हम्द निश्चित तौर पर ज़रूरी है। यानी कोई दुसरा सूरा इसका बदल नहीं बन सकता। इसी वजह से सूरा हम्द के नामों में कुछ उलेमा ने सूरा हम्द का नाम ''सूरतुस्सलात'' भी दर्ज किया है। सूरा हम्द के बारे में अमीरुल मोमिनीन अ0 का यह कथन मशहूर है कि:–

''जो कुछ पूरे क़ूर्आन में है वह सूरा हम्द में है।'' इसको असल मतल व और व्याख्या को तो पूरे तौर पर हम नहीं समझ सकते मगर हम अपनी अक़्ल के हिसाब से भी ग़ौर करते हैं तो मालूम होता है कि पूरे क़ुर्आन का असली मक़सद दो बातें हैं: 'ईमान' (विश्वास) और 'अ़मल (कर्म)'। ईमान' के दो हिस्से है, मुबदा (आदि) और मआद (अन्त), और कर्म के दो हिस्से हैं: अच्छी बातों को करना और बुरी बातों से दूर रहना।

सूरा हम्द में क्रम ये सारी बातें मिलती हैं। *''अल्हम्दुलिल्लाहि रब्बिल आ–लमीन, अर्रह़मानिर्रह़ीम''* पहला मुबदा यानी खुदा पर ईमान। *''मालिकि यौमिद्दीन* ''आख़ेरत के दिन (प्रलय) का मालिक, *''सिरातल्–लज़ी–न अन्' अम–त 'अलैहिम* 'ये है अच्छे कर्म को करना और *''ग़ैरिल मग़्ज़ूबि अलैहिम् वलज़्ज़ाल्लीन''*, ये है बुरे कामों से दूर रहना।

मालूम होता है कि सूरे हम्द एक आलेख है और पूरा क़ूर्आन उसकी व्याख्या। वह अस्ल है और पूरा क़ूर्आन उसका विस्तार। सूरा हम्द में भी सबसे अहम आयत *बिस्मिल्ला–हिर्रहमा–निर्रह़ीम''* है। इसके बारे में अमीरुलमोमिनीन अ0 ने फ़रमाया है कि जो कुछ पूरे सूरे हम्द में है वह सिर्फ़ *''बिस्मिल्लाह''* में है। आप इन चारों हिस्सों पर ग़ौर किजीए जिनका पता मैने सूरे हम्द से दिया है तो मालूम होगा कि उन सब का निचोड़ ख़ुदा और बन्दे का आपसी रिश्ता है। पालने वाले को किसी की ज़रूरत नहीं पर सबको उसकी ज़रूरत है। इस रिश्ते को *''बिस्मिल्लाहिर्रह़मानिर्रहीम''* बताता है जिसमें बन्दा अपने पालने वाले के प्रदान और दया का पता देता हो, उससे मदद चाहता है। शायद इसी अहमियत की बात है कि सूरे हम्द में इस आयत के लिये ख़ास तौर से ऊँची आवाज़ से पढ़ने का हुक्म है, चाहे जुहर या 'अस्र की नमाज़ हो जिसमें सूरे को चुपके पढ़ना ज़रूरी है।

अब ज़रा सूर–ए–हम्द के मानें को देखिये। विस्तार का यह मौक़ा नहीं है इसलिये हमारी किताब ''तफ़सीर'' को देखें जिसका एक पूरी भाग (Volume) सूरा हम्द की व्याख्या में लिखा गया है। इन्सान मुसल्ले (नमाज़ की जगह, चटाई आदि) पर आता है और नमाज़ की नीयत करता है जिसमें कार्य को अपनी ओर से करने की बात करके मक़सद को ज़ाहिर करता है। इसमें किसी हद तक अहम् या हमहम आ सकता है, इसलिये बुलन्द आवाज़ से कहता है *''बिस्मिल्ला–हिर्रहमा–निर्रहीम''* ''मदद से अल्लाह की

जो बड़ा दया वाला दयानिधान और बड़ा रहम करने वाला है।" इसका मतलब ये है कि जो कुछ मैं करना चाहता हूँ उसके लिये इरादा तो मेरा है मगर उसका पूरा होना अल्लाह की मदद पर निर्भर है। *"अल्हम्दु लिल्लाह रब्बिल् आ–लमीन"*, सारी तारीफ़ें सिर्फ़ अल्लाह के लिए जो "सभी संसारों का पालने वाला है", इसे एक प्रशंसापत्र (तारीफ़ का पत्र) समझिए जो बन्दा (दास) अपने मालिक के दरबार में सामने के बाद पेश कर रहा है *"अर्रहमा–निर्रहीम"* जो बड़ी दया वाला है, और बहुत रहम करने वाला है। इसका बयान बिस्मिल्लाह में भी हो चुका था। मगर वहाँ मदद माँगने के बारे में था और यहाँ सस्तुति के सबूत में है और जगह बदली हुई है और इसका फ़ायदा अलग–अलग है इसलिए इसे बार बार कहना नहीं कहा जा सकता। *"मालिकि यौमिद्दीन"* वह जो रोज़े बदले के दिन/प्रलय/क़यामत का मालिक है", इसके पहले उसके खुदा होने की बात थी जिसकी खुली निशानियाँ दुनिया के सामने हैं। अब नज़र आगे पढ़ी और मानलिया कि सिर्फ़ दुनिया में ही नहीं बल्कि आख़ेरत पर भी क़ब्ज़ा उसी का है, इसलिए बंदे की हाजतें (आवश्यकताएँ दुआएँ) वहाँ के लिए भी उससे जुड़ी हैं। 'खुदाई' आदमी के होने से पहले है। और पालने वाले का रिश्ता आदमी के होने याने जीते जी तक ज़ाहिर है क्योंकि वही उसके बाक़ी रहने और उसे उसके परवान चढ़ाने का कारण है और *"यौमिद्दीन"* यानि क़यामत के दिन का राज भविष्य याने आने वाले काल से जुड़ा है। इस तरह इन थोड़े से बोल में आदमी की निगाह भूत, वर्तमान और भविष्य काल सबके ऊपर पड़ गयी और सिरजनहार की महानता का एक नक़्शा उनके सामने खिंच गया, जिसकी वजह से इसके पहले अगर वह उसकी निगाह से ओझल था और इसलिए वह आड़ से कह रहा था तो अब वह परदा हट गया और उसका तेज विल्कुल आंखों के सामने आ गया इसलिए अब बात 'वह' से 'तू' में होने लगी, *"ई–या–का–नअ़–बुदु व ईया–क नस्तईन"* "हम तेरी ही इबादत/भक्ति करते हैं और तुझही से मदद चाहते हैं।" दूसरी जगह होती तो 'हम' कहने में बड़ाई पैदा होती थी मगर अपने की बड़े की सेवा में पेश करने के मौक़े पर 'मैं' का कहना अहम् को दिखाता है। कहा जा रहा है कि 'हम' तेरी ही भक्ति करते है" यानी ये खुद अपने आप को अकेला और उसकी सेवाओं को कहने के क़ाबिल ही नहीं समझता बल्कि अपने को खुदा के सारे बन्दों में मिला कर अल्लाह की सेवा में निवेदन करता है फिर भक्ति के लगाव को अपनी ओर कर देने से अपने आप पर भरोसे को दिखाना था इसलिये कह दिया *"व ई–या–क नस्तईन"* यानी हम क्या, जो तेरी भक्ति कर सकें, हम अपनी सकत भर भक्ति करते हैं और फिर तुझही से मदद की उम्मीद रखते हैं।

खुदा की मदद इंसान के कर्म पर निर्भर है–"वल् लज़ी–न जा–हदू फ़ीना ल–नह्दियन्–नहुम सुबु–लना" जो हमारे रास्ते में जतन करते हैं हम उन्हें अन्त तक पहुँचा भी देते हैं।" इसलिये पहले *"ई–या–क ना'बुदु"* कहा गया है फिर *"व ईया–क–नस्तईन"* क्यों कि अगर यह भक्ति में आगे न बढ़े तो इसे मदद मांगने का कोई हक़ नहीं है। फिर ये ज़ाहिर करने के लिए कि ये मदद् दुनिया की किसी ज़रूरत के लिए नहीं है, तो उसकी व्याख्या कर दी *"इह्दि नस्–सिरातल–मुस्–तक़ीम"* वह कौन सा सीधा रास्ता? *"सिरातल लज़ी–न अन अ़मत अलैहिम"* उन लोगों का रास्ता जिनको तूने अपनी नेमत (अच्छाइयों) से मालामाल किया है। वह लोग कौन है? इसका साफ़ बयान कुरान मजीद में एक और जगह इस तरह कर दिया गया है कि "फ़–ऊला–इ–क म–अ़ल्–ल–ज़ीन, अन्–अ़–मल्लाहु अ़लैहिम् मिनन्नबी ईन वस् सिद्दीक़ी–न वश्शु–ह–दाइ वस् सालिही न" मालूम हाता है कि ये वह लोग हैं जिन पर खुदा की तरफ़ से इनाम हुआ है। मतलब ये हुआ कि मुझको नबियों, सच्चों शहीदों और नेक लोगों के रास्ते पर ले चल यानी उनके जैसे काम करने की तौफ़ीक़ (वरदान) दे। उलट से उलट की तरफ़ निगाह का मुड़ना अवश्य ही होता है। उन नेक लोगों का बयान करने के साथ ही बुरे काम करने वाले लोगों की तरफ़ निगाह गयी और उनसे घिन पैदा हुई तो बन्दे ने उनसे अलग थलग रहना चाहा और पनाह माँगी कि *"ग़ैरिल्–मग़ज़ूबि अ़लैहिम व लज़्ज़ाल्लीन"* उन लोगों के रास्ते की तरफ़ नहीं जिन पर तेरा ग़ज़ब (प्रकोप) पड़ा है और जो गुमराह (पथ भ्रष्ट) हैं।

इन्सान को चाहिए कि सूरे के उन बोलों को पढ़ने की तरह ज़बान पर लाता रहे और दिल में उसके

यही अहसास पैदा होते रहें, इससे अच्छे कामों की तरफ़ मिलान और बुरे कामों से नफ़रत का जज़्बा पैदा होगा और इबादत भक्ति का मक़सद पूरा होगा।

nwljk lwg

सूरे हम्द के बाद कोई दूसरा सूरह पढ़ना चाहिए। इसके लिए किसी ख़ास सूरे का बन्धन नहीं है फ़िर भी सूरह हम्द के बाद सभी सूरों में अफ़ज़ल सूरह *''कुलहुवल्लाह''* है लेकिन पहली रकअत में *''इन्नाअनज़लना''* पढ़ने को भी कहा गया है इसलिए हम सूरह *''इन्नाअनज़लना''* और फिर *''कुल्हुवल्लाह''* के मानी लिखते हैं। नमाज़ में इनका पढ़ना ख़ास तौर से आया है।

l wg bUukvUt y-uk

ये सूरह ख़ासतौर से खुदा के रसूल हज़रत मुहम्मद (स0) के साथ लगाव रखता है क्यों कि ये आप (स0) की ढारस के लिए उतरा है। इन्–न अन्ज़ल्नाहु फ़ी लै–ल–तिल् क़द्र

हमने इस कुरान को शबे–क़द्र (महिमा की रात) में नाज़िल किया। शबे–क़द्र के मानी खुदा के द्वारा तय करने (भाग्य) की रात । इमामों (अ.) की हदीसों में आया है कि इस रात को सारे साल के होने वाले कामों का भाग्य तै होता है। जो लोग यह मानते हैं कि सारे का सारे भाग्य अज़ल शुरू में निश्चित हो चुका है और अब किसी बदलाव की जगह नहीं है, उनके लिए शबे–क़द्र का कोई मतलब पैदा नहीं होता, मगर हम जो खुदा के भाग्य को कारण और हालात से जुड़ा हुआ समझते हैं और यक़ीन रखते हैं कि खुदा अब भी दुनिया के निज़ाम (System) से अलग और निलम्बित नहीं है बल्कि'''यम्हुल्लाहु मा यशा–उ वयुस्बितु व इन्दुहु उम्मुल किताब (अल्लाह जो चाहता है मिटा देता है और ठहरा देता है और....)'' यही वह ख़्याल है जिसको ''बदा'' का विश्वास कहते हैं। हमारे नज़दीक *''लैलतुल क़द्र* (भाग्य की रात)'' का ये मतलब समझा जाता है कि उन निश्चित भाग्यों के मातहत जो आम कारण के आधार पर हमेशा से निश्चित हैं, वह ख़ास वक़्ती हालत के लेहाज़ से हर साल के लिए जो फैसला होना है वह शबे क़द्र में होता है। दूसरी बात इस रात में कुर्आन के नाज़िल होने (उतरने) का मतलब चर्चा का विषय है। यह जबकि वह तेइस 23 बरस की लम्बी अवधि में थोड़ा–थोड़ा करके यानि आयत–आयत या सूरह–सूरह करके उतरा है।

इसके बारे में मैं अपनी उर्दू किताब 'मुकद्दमए तफ़सीर' (कुरान व्याख्या की प्रस्तावना) में ये विचार सामने लाया हूँ, जैसा कि हदीसों से पता चलता है कि कुर्आन पहले बैतुलमामूर ('वसाया/बनाया हुआ निवास/काबे के ठीक ऊपर फ़रिश्तों द्वारा बनाया हुआ घर') में नाज़िल हुआ था फिर वहाँ से थोड़ा–थोड़ा करके रसूल (स0) पर उतरा है। यह तारीख (शबे क़द्र) उसी पहली बार नाज़िल होने के बारे में है जो मलायआला (उच्चतम स्थान) में हुआ था।*''व मा अद्रा–क मा लै–लतुल् क़द्र''* और तुम्हें क्या पता कि शबे क़द्र क्या चीज़ है? यह सवाल करना महत्ता को ज़ाहिर करने का एक अंदाज होता है जिसका मतलब यह होता है कि उसकी महत्ता/श्रेष्टता तुम्हारी समझ से बाहर है। *'' लै–लतुल् क़द्रि ख़ैरूम् मिन् अल्फ़ि शह्र ''*शबे क़द्र हज़ार महीनों से अच्छी है। इसके नाज़िल होने (उतरने) के बारे में दो रवायते हैं, एक यह कि रसूले खुदा हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा (स0) को मालूम हुआ कि बनी इसराईल में से एक आदमी हज़ार महीने तक तलवार कन्धे पर रखे जेहाद (संग्राम) में लगा रहा। आप (स0) को अफ़सोस हुआ कि मेरी उम्मत की उम्र इतनी कम है कि वह इस नेमत/अच्छाई का फ़ायदा नहीं उठा सकती। तो यह आयत उतरी जिसका मतलब यह है कि तुम्हारी उम्मत के लिए उस एक रात के काम उन सारे हज़ार महीनों से अच्छे है जिनमें उस इसराईली ने खुदा के रास्ते में जेहाद किया था।

दूसरी रवायत यह है कि जनाब रसूल (स0) ने ख़्वाब में देखा कि बनी उमइया आप (स0) के मिंबर पर बंदरों की तरह उछल–कूद रहे हैं। आप (स0) को इस पर बड़ा दुख हुआ। इस पर यह सूरह नाज़िल हुआ। हज़ार महीने का मतलब बनी उमैया का पूरा राज्यकाल है। (हज़ार महीने राज रहा) मतलब यह है कि ऐ रसूल (स0) इसका दुख न करो कि बनी उमैया तुम्हारी शरीयत को तबाह व बरबाद कर देगें, क्योंकि जो तुम्हारी शिक्षा पर बाक़ी रहेगें और निरे खरे मोमिन होंगे उनके लिए एक रात शबे क़द्र उन सब हजार महीनो से अच्छी है जिनमें बनी उमइया राज करेंगे। इसी नाज़िल होने की वजह से समझ में आता है कि शबे क़द्र को इमाम हुसैन (अ0) की ज़ियारत के लिए

क्यों कहा गया है? यह रात बनी उमइया के ज़ुल्म के मुक़ाबले में रसूल (स0) की ढारस की वजह बनी इसलिए इस रात में ईमान वालों (आस्तिकों) को वह सबसे बड़ा ज़ुल्म अत्याचार याद दिलाया जाता है जिसके बनी उमइया दोषी हैं।

तन्ज़्–ज़लुल् मलाइ–कतु वर्रूहु फ़ीहाबि इज़्नि रब्बिहिम

"(इस रात में) उतरते है फ़रिश्ते और रूह, अपने ख़ुदा के हुक्म से"

क़ुर्आन ने इतना ही बताया है कि इस रात को बराबर फ़रिश्ते आसमान से उतरते हैं, मगर कहाँ आते हैं इसका कोई बयान नहीं। हदीसों में आया है कि ये ह0 इमामे ज़माना (अ0) के पास आते हैं, *"मिन कुल्लि अम्रिन सलाम"* यह रात हर बात से सलामती (ठीक–ठाक होने) का ज़रिया है, *"हि–य हत्ता मत्लइल फ़ज्र"* वह रात (अपनी सारी बरकतों समेत, सादिक (सच्ची) सुबह तड़के (सुबह की नमाज़ के पहले वक़्त तक) चूँकि आम तौर से सूरज के निकलने/सूर्योदय तक रात की हद समझी जाती है मगर शरीयत की ज़बान में रात की हद सुबहे सादिक़ (अस्ल सवेरा) से ख़त्म हो जाती है। इसलिए शबे क़द्र की भी आख़िरी हद सुबह सादिक़ ही है सूरज निकलने तक नहीं।

I jg dqygoYylg

सूरह हम्द के बाद सारे सूरों में ऊँचा दरजा सूरह तौहीद (*कुल हु–वल्लाह*) का है। इसको एक तिहाई क़ुर्आन कहा गया है। इसकी यह वजह हो सकती है कि इस्लाम के उसूल तीन हैं–

1.तौहीद (एकेश्वरवाद) 2.नबूवत 3.क़यामत

हम जो उसूल–ए–दीन (धर्म की जड़ों) में 'अदल' (ख़ुदा का न्याय) और 'इमामत' को भी शामिल हैं वह इस वजह से कि अद्ल, तौहीद का एक हिस्सा है और इमामत नबूवत की एक ख़ास शाखा है। हम इसका अलग से इस लिए नाम दे देते हैं कि लोगों ने इसका इंकार ज़रूरी समझा है मगर असल में जब तक अद्ल को माना न जाए तौहीद पूरी नहीं होती और 'रिसालत' की सच्चाई पूरी नहीं जब तक इमामत मानी न हो।

देखिए तो तौहीद के यह माने नहीं है कि सिर्फ़ ख़ुदा के होने को मान लें क्योंकि यह तो किसी न किसी हद तक दुनिया के सभी मज़हब का मानना है। इसाई तीन (Trinity) में का एक कहके भी उसके होने को मानते हैं और मुश्रिक लोग मूर्ति पूजा के साथ भी उस ख़ुदा (निराकार ईश्वर) का इंकार नहीं करते हैं। मालूम होता है कि तौहीद के अंदर उस का भरपूर 'निज' और महान गुणों का मानना छिपा है। अब अगर कोई एक ऐसे ख़ुदा को मानता है जो उसके नज़दीक अन्याय, अति, बेइन्साफ़ी और बेकार के काम से जुड़ा हो तो यह किसी तरह उस ख़ुदा को मानना नहीं है जो असल में उन सारी बुराइयों से परे और पाक है, ख़ासतौर से जबकि हमारा विश्वास उस ख़ुदा से जुड़ा होता है, जिसकी ओर से गुण इशारा करते हैं और बस, वरना हमारे लिए उसके निश्चित करने का कोई साधन नहीं है।

मालूम होता है कि इन सब बातों में सबसे ऊपर की बात ख़ुदा की पहचान है जिसको 'तौहीद' का नाम दिया जाता है। ये इस्लाम का सबसे पहला मक़सद है, फिर दूसरे दरजे पर रिसालत/नबूवत और तीसरे पर क़यामत है। सूरह *"कुल्हुवल्लाह"* शुरू से आखिर तक उसी पहले मक़सद यानी 'तौहीद' को पूरी तरह पंहुचाता है, इस लेहाज़ से वह क़ुर्आन के सब मक़सदों का एक तिहाई हिस्सा है, और इसीलिए उसे एक–तिहाई क़ुर्आन कहा गया है।

"कुल हु–वल्लाहु अहद" ये ख़ुदा की 'तौहीद' की बात है, इस्लाम के पैग़म्बर (स0) की आवाज़ थी– *"क़ूलू ला इला–ह इल्लल्लाहु तुफ़्लिहू"*–

"कहो कि अल्लाह के अलावा कोई भगवान नहीं तो नजात, मोक्ष/सफलता पाओगे।"

हमारे रसूल (स0) की आवाज़ में एक सामूहिक शान थी। मालूम होता था कि आप (अ0) एक मजमे से बात कर रहे हैं। ऐसा लगता है कि क़ुर्आन हर–एक का कन्धा हिला कर और झिंझोड़ कर उससे कहता है–*"कुलहु वल्लाहु अहद"* "कहो कि वह अल्लाह है एक अकेला"। इसमें पहले ख़ुदा को शब्द "हु", के इशारे से निश्चित किया गया है। बात ये है कि गुण (Qualities) कभी किसी के निर्धारण करने का फ़ायदा नहीं दे सकते। हर लफ़्ज (शब्द) जिसका कोई मुस्तक़िल (नियमित) माने है वह अपने साथ एक गहराई की बात लिए हुए होता है। माने के साथ माने का बन्धन लगाने से कभी निर्धारण नहीं होता। लेकिन अगर इशारा किसी ख़ास की तरफ़ हो तो बड़े से बड़ा माने भी निश्चित हो जाता है, जैसे– वह चीज़, वह माने, वग़ैरह–वग़ैरह।

यहाँ चीज़, माने के शब्द में बहुत गुंजाइश है, मगर सिर्फ़ ''वह'' ने इसको एक से इतना ख़ास बना दिया कि दूसरे की जगह नहीं। दूसरा ज़रिया किसी चीज़ के (निश्चित) करने का उसका 'नाम' ले लेना है और नाम तो उस ज़ात से ख़ास लगाव रखता है कि जिसका नाम लिया जा रहा है, अब अगर नाम लेकर जिसका नाम हो उसका पता देना हो तो फिर वही ''वह'' का शब्द याद रह जाता है जो उसे तय (निश्चित) करता है। मान लीजिए मैं बताना चाहता हूँ कि ज़ैद किस का नाम है, तो ये उसी तरह हो सकता है कि उसे लाकर सामने खड़ा कर दूँ और कहूँ कि यह ज़ैद है या अगर सामने नहीं है तो 'वह' के लफ़्ज़ (शब्द) से उसकी तरफ़ इशारा कर दूँ, जैसे वह जिसके बारे में मैं बताना चाहता हूँ ज़ैद है।

बस इसी तरह खुदा की ज़ात हमारे सामने आ नहीं सकती और गुण (Qualities) उसकी ज़ात (निज/व्यक्तित्व) को तय कर नहीं सकते। अब उसकी तरफ़ मन को ले जाने के लिए एक तो उसके ख़ास नाम का ज़रिया है और वह नाम 'अल्लाह' है, मगर अल्लाह के नाम का जब पता देना है तो फिर इशारे के छोड़ और क्या सूरत हो सकती है और वह है शब्द*''हु–व''* ,जो कोई ठहरे मानी नहीं बयान करता बल्कि निश्चित करने के लिए बनाया गया है। *''कुलहुवल्लाहु अ–हद्''* ने उसकी ज़ात के बताने के लिए इसी से काम लिया है कहो कि वह अल्लाह है, उसका पता देने के लिए ''वह'' से ज़्यादा कुछ है ही नहीं। इस ''वह'' के पहचानने वाला बनाने के लिए यह हमारा काम है कि हम गुण की दुनिया में सिमट कर हम्द संस्तुति के शौक़ में पूरा कर लें। मगर उसकी ज़ात तक यह गुण सिर्फ़ ''वह'' की मदद ही से पहुँच सकते हैं, वरना कहाँ ''वह'' और कहाँ शब्दों की दुनिया में घिरे हुए गुण ''वह'' ने उस छुपे (आस्तित्व) हस्ती की तरफ़ मन को ध्यान दिलाया और 'अल्लाह' के शब्द ने उसका नाम बताया। फिर ''अ–हद्'' के माने ने उसकी ज़ात के लिए उस पूरेपन को ज़ाहिर किया जिसकी वजह से वह सबसे अलग है। याद रखिए कि यह ''अ–हद्'' और ''वाहिद'' के मानी एक ही नहीं है। वाहिद तो अपनी हद में हर चीज़ हो सकती है, एक आदमी अपने जिस्म के हिस्सों के साथ 'एक आदमी' है और एक शहर , लाखों रहने वालों के बावजूद एक शहर है और पूरी दुनिया में इतने लोगों के होने के बाद भी 'एक दुनिया' है मगर इनमें से कोई चीज़ भी 'अ–हद्' नहीं है, 'अ–हद्' वह एक अकेला है जिसमें कोई चीज़ मिली न हो, यह एक अल्लाह के और कोई भी नहीं *''अल्लाह हुस्समद''*, अल्लाह वह मालिक व सरदार है जो सबका क़िब्ला, जिधर सब मुंह करें जो सबके मक़सद और ज़रूरतों का केन्द्र बिन्दु है।''

'समद' के यह माने हैं जो खुदा की ज़ात के लिए मुनासिब हैं। कुछ लोगों ने 'समद' के मानी *'मा जो–फ़ लहू'*, वह ठोस चीज़ जिसमें ख़ोल न हो, बताए हैं, यह खुदा की ज़ात के लिए मुनासिब नहीं। *''लम यलिद व–लम यूलद्''*, '' न वह किसी का बाप है और न वह किसी का बेटा है।'' इसके पहले जो तौहीद का बयान हुआ था उसमें सीधी मूर्तिपूजा पर चोट पड़ती थी क्यों कि वह खुदा की इबादत/भक्ति और उसी को ज़रूरत का मरकज़ बनाते थे मगर इस वाक्य ने इसाईयत को ग़लत साबित किया गया है क्यों कि ईसाई हज़रत ईसा (अ0) को अल्लाह का बेटा कहते हैं और यहूदियों की बातें भी क़ुर्आन में दर्ज हैं कि वह ''उज़ैर ''अ0'' को अल्लाह का बेटा कहते हैं। *'' लम यलिद''*, 'वह किसी का बाप नहीं, इससे इस अक़ीदे को ग़लत साबित किया गया है। रह गया वह दूसरा हिस्सा *''वलम युलद''*, 'और वह किसी का बेटा नहीं है।'इस में सामने से किसी मज़हब को ग़लत साबित नहीं किया गया है क्यों कि हमें कोई ऐसा फ़िरक़ा नहीं मालूम जो खुदा को किसी का बेटा समझता हो, बल्कि इसका ब्यान इस जगह पर पहले जुम्ले के लेहाज़ से है और इस बात की तरफ़ इशारा है कि खुदा को किसी का बाप समझना उसी तरह ग़लत है जिस तरह उसे किसी का बेटा समझना। यह दोनों बातें मोहाल (बिल्कुल नामुम्किन) हैं और कोई भी अक़लमन्द इसको नहीं मानता। *'' वलम या कुललहू कुफ़ुअन अहद''*, ''और कोई उसका हमसर (उस जैसा) नहीं ''यह जुम्ला तौहीद (ईश्वर को एक मानना) के सारे पहलुओं को अपने अन्दर समेटे हुए है। इससे एक तरफ़ मूर्तिपूजा को ग़लत साबित किया गया है क्यों कि वह बुतों को खुदा को तरह इबादत के लायक़ समझते हैं। दूसरी तरफ़ इसाईमत ग़लत साबित होता है क्यों कि बेटा बाप की प्रजापति (Species) का होता है।

¼kjh———½

बलिदान का महत्व

dk;nsfeYyr ekSykuk lS;n dYcst okn udoh lkgc fdCyk

इन्सान जब कोई उद्देश्य पाना चाहता है तो उसको कोई बलिदान देना होता है। शिक्षार्थी अपने समय और क्षमताओं की बलि देता है तब परीक्षा में उत्तीर्ण होता है। व्यवसायी अपनी पूंजी और मेहनत की कुर्बानी देता है तब कामयाबी कदम चूमती है। एक मुलाज़िम और मज़दूर सवेरे से शाम तक कष्ट झेलता है तभी प्रतिकार का हकदार होता है। किसान ज़मीन जोतने, बोने में और माली बाग़ की देखभाल में चोटी का पसीना ऐड़ी तक बहाता है तब खेती लहलहाती है और बाग़ हरा रहता है। उद्देश्य जितना महान और निशाना जितना ऊंचा हो कुर्बानी भी वैसी ही देनी होती है।

''कुर्बानी'' अरबी शब्द है, यह ''कुर्ब'' से बना है जिसमें ''अलिफ'' और ''नून'' बढ़ा दिया गया है जैसे ''रहमान'' और ''इमरान'' आदि में है। कुर्बान में निस्बत की 'ये' बढ़ायी गयी तो ''कुर्बानी'' शब्द बना। कुर्बान का शाब्दिक अर्थ तो बस इतना है कि वह बातें जो किसी से भी समीपता और सान्निध्य का माध्यम हैं, क़ुर्ब का वसीला हैं। लेकिन इस्लाम के विधि शास्त्र में इसका परिभाषिक अर्थ यह है कि खुदा की बारगाह में जान एंव माल इस नीयत से पेश करना कि ईश्वर के दरबार में समीपता प्राप्त हो, ''कुर्बानी'' कहलाता है।

सबसे पहले कुर्बानी की चर्चा धार्मिक इतिहास में जनाब आदम (अ०) के बेटों जनाब ''हाबील'' और ''काबील'' के जिक्र में मिलती है। कुर्आन मजीद बताता हैः–

ऐ रसूल! तुम इन लोगों से आदम के दो बेटों (हाबील और काबील) का सच्चा क़िस्सा बयान कर दो कि जब इन दोनों ने खुदा की बारगाह में भेंट चढ़ाई तो उनमें से एक (हाबील) की भेंट स्वीकार कर ली गयी और दूसरे की भेंट नहीं स्वीकार हुई।

कहा जाता है यह प्रेम प्रसंग था। ''क़ाबील'' भी उसी लड़की से शादी करना चाहता था जिसकी सगाई और निस्बत जनाब ''हाबील'' से थी और इसी दुश्मनी में ''क़ाबील'' ने जनाब ''हाबील'' को क़त्ल कर दिया। किन्तु अहले–बैत (अ०) अर्थात हज़रत पैग़म्बर के निष्पाप परिजनों से अनुहार किया गया है कि हज़रत आदम ने जनाब हाबील के सद्गणों के कारण उनको अपना नायब और वसी चुना था और यही बात क़ाबील को नागवार थी।

खुली बात है कि जनाब ''हाबील'' का चयन अल्लाह के हुक्म की बिना पर हुआ था, चुनान्चे इलाही फैसला, ईश्वरीय निर्णय जानने के लिए दोनों ने भेंट चढ़ायी, कुर्बानी पेश की। जनाब ''हाबील'' के पास चरने वाले जानवर थे, आपने एक तन्दुरूस्त भेंड़ प्रस्तुत की और ''क़ाबील'' खेती करता था उसने गेहूं की बालियां रखीं। खुदा की बारगाह में भेंट स्वीकार हो जाने की पहचान यह कि आग उसे भस्म कर दे, चनान्चे जनाब ''हाबील'' की कुर्बानी आग के माध्यम से स्वीकार हो गयी और यही बात शत्रुता की जड़ बन गयी। कुर्आन मजीद से यह भी पता चलता है कि इसके बाद भी यह सिलसिला चलता रहा। यानी खुदा के क़रीबी बन्दे अपनी चहेती और प्रिय चीजें अल्लाह की बारगाह में पेश करते रहे और उन्हें आग जला कर उनके कुबूल हो जाने का उद्घोष करती रही। चुँनान्चे सूरा आले इमरान की 30 वीं आयत में यहूदियों के सवाल और उसके जवाब की चर्चा इस तरह की गई है।

''जो लोग यह कहते है कि अल्लाह ने ही यह बात पक्की कर ली है कि हम किसी पैग़म्बर पर ईमान न लायें जब तक कि वह ऐसी कुर्बानी पेश न करे जिसे आग जला दे''।

यह उन की मांग थी, जवाब में कुर्आन का इरशाद हैः–

''उनसे कहिये कि तुम्हारी तरफ से मुझसे पहले

बहुत से पैग़म्बर उज्जवल निशानियों के साथ आये और उसके साथ भी जो तुम ने कहा है(यानी बलि का आग से जलना) तो तुम ने क्यों उनको क़त्ल कर दिया, यदि तुम सच्चे हो "अर्थात यह तो न मानने का कहना हुआ, वास्तव में तुम संमार्ग ग्रहण ही नहीं करना चाहते, कुर्आन मजीद का वाक्य और वह बात जो तुम ने कही (उसे भी पैग़म्बरों ने प्रस्तुत किया) इससे पता चलता है कि जनाब "हाबील" के पश्चात भी इस तरह कुर्बानी पेश होती रही

इस प्रकार के बलिदानों का उद्देश्य भी बहुत महान है। अल्लाह को मानने और स्वीकार करने का अर्थ ज़बान से "ला इलाहा इल्ललाह" अल्लाह के सिवा कोई खुदा नहीं, कह देना भर नहीं है बल्कि पैदा करने वाले के और जितने भी वरदान है, सबके देने वाले सब सदगुणों की धनी जात (अस्तित्व) एक बन्दे की निगाह में सबसे प्यारी होना चाहिए। कुर्आन ने ईमान लाने वालों की महिमा यह बताई है– ईमान लाने वालों की नज़र में सबसे प्रिय ज़ात अल्लाह की होती है" इसी अथाह प्रेम का प्रदर्शन अपनी प्रिय वस्तु प्रस्तुत करके किया जाता था। इस तरह के बलिदान का पूर्ण बिन्दु और पराकाष्ठा वह बलिदान था जो जनाब "इब्राहीम" (अ०) ने अपने सुपुत्र जनाब "इस्माईल" (अ०) का प्रस्तुत किया। उसका कुर्आन मजीद में विस्तृत वर्णन मौजूद है कि जनाब "इब्राहीम" (अ०) ने ताबड़तोड़ स्वप्न में देखा कि वह अपने बेटे को ज़िब्ह कर रहे हैं। जब बेटे से अपने सपने की चर्चा की तो कमसिन बेटा जब्ह हो जाने पर पूरी तरह तत्पर दिखा मगर अल्लाह ने जन्नत से फिदयः (मुक्ति प्रतिदान) भेज कर जनाब इस्माईल (अ०) को बचा लिया। यह श्रेष्ठतम बलिदान भाव अल्लाह को इतना पसन्द आया कि उसकी यादगार 10 जिलहिज्जा, बक़रअीद के दिन पूरी दुनिया के मुसलमान जानवर ज़िब्ह करके शुक्राने (आभार प्रकाशन) की नमाज़ पढ़कर मनाते हैं। इतना ही नहीं यह इस्लाम की सबसे महत्वपूर्ण उपासना हज़ के संस्कारों में शामिल है। इस यादगार का उद्देश्य जाहिरी तौर पर यही समझ में आता है कि प्रत्येक मुसलमान कम से कम वर्ष भर में एक बार इब्राहीमी भावना का नवीनीकरण कर लें और यह याद कर लें कि हम इब्राहीमी पन्थ की एक इकाई हैं, इस्लाम का नाम भी सर्वप्रथम उन्हीं से चला है।

इब्राहीमी पन्थ की एक इकाई और अपने को मुसलमान कहने का तक़ाजा है कि अगर आवश्यकता पड़े तो औलाद सी प्यारी और चहीती चीज़ भी अल्लाह की प्रसन्नता के लिये न्योछावर कर देने को तत्पर रहें।

हज़रत पैग़म्बर "मोहम्मद" (स०) की पैग़म्बरी के उदघोष के बाद भी बलिदान की कल्पना बनी रही परन्तु भावना में कुछ और निखार आया और बलन्दी पैदा हुयी। वह ऐसे कि अब केवल अल्लाह की मुहब्बत की ही प्रदर्शन दृष्टिगत न रहा बल्कि उसकी सृष्टि का भला भी शामिल हो गया। अब जो कुर्बानी की जायेगी उसे बिजली गिर कर जलायेगी नहीं बल्कि हुक्म हुआ, "कुर्बानी का गोश्त खुद खाओ और संकट ग्रस्त दीन दुखियों को भी खिलाओ।" कुर्आन आगे बताता है, अरब के गंवारों में कुछ वह हैं जो अल्लाह और क़यामत के दिन पर ईमान रखते हैं और अल्लाह की राह में अपना सब कुछ व्यय करते हैं और उसे अल्लाह की बारगाह में समीपता और रसूल (स०) की दुआओं का माध्यम कहते हैं।

यह है कुर्बानी की इस्लामी कल्पना अर्थात अल्लाह की प्रसन्नता के लिए जानमाल को इस तरह लुटाना कि जिससे अल्लाह के प्रति प्रेम भी प्रकट हो और उसकी सृष्टि को लाभ भी मिले। कुर्बानी की सामान्य व्याख्या और इस्लामी परिभाषा में मौलिक भेद यही है कि सामान्य व्याख्या में किसी महत्वपूर्ण उद्देश्य हेतु अपनी किसी प्रिय चीज को न्योछावर कर देना कुर्बानी कही जाती है, किन्तु इस्लामी परिभाषा में कुर्बानी के लिये ईश्वरीय प्रसन्नता की तलब बुनियादी शर्त है।

दुनिया में वही राष्ट्र और जातियां ज़िन्दा रहती हैं और सरबलन्द होती हैं जिनमें बलिदान भाव पाया जाता है, यहां बस उन्हीं को जीवित रहने का अधिकार है जो मरने के लिए तत्पर रहें। इतिहास साक्षी है कि जान बचाने वाले, स्वार्थी, आत्मपूजक, तबाह व बर्बाद हो जाते हैं। सब कुछ लुटा देने वाले और हर बलिदान पर तैयार रहने वाले इज़्जत आबरू से ज़िन्दा रहते हैं और सरबलन्द रहते हैं। इस्लाम का प्रारम्भिक विकास अनुकूल वातावरण में नहीं हुआ था। हज़रत पैग़म्बर (स०) ने जब तौहीद की दावत दी, एकेश्वरवाद का आह्वान किया तो परिस्थितियां सर्वथा प्रतिकूल थीं, हर तरह की बुराईयां अरबों में रची बसी हुई थीं।

अनैतिकता अपनी अन्तिम सीमांए छू रही थीं, जुआ, शराब, सूदखोरी व्यापक थी, रक्तपात का व्यापार गर्म था, दूसरे क़बीलों को लूट लेना और डाके डालना गौरव की बात समझी जाती थी। जाहिली (इस्लाम पूर्व) दौर का इतिहास जानने का एक मात्र सूत्र अरबों की कविता है जो उनकी सभ्यता और संस्कृति का प्रतीक समझी जाती है। अरब के क़बीले जो पूर्वजों के प्रतीक पर गौरव के अभ्यस्त थे उन्होंने अपने कवियों की रचनायें हमेशा अपने मन मस्तिष्क में सुरक्षित रखी हैं। इन कविताओं के देखने से ज्ञात होता है कि वह बुराईयों को गौरव की बात, डाके, चोरी, मदिरापान, जुए और लूटमार को गौरव की बात समझते थे। बुराई को बुराई माना जाये तो उसका छुड़वा देना फिर भी सहज है परन्तु जब बुराईयां अच्छाईयों का रूप धारण कर मन मस्तिष्क पर अधिकार जमा लें और वातावरण बुराईयों के रंग में रंग जाये तो उसका सुधार विकट कार्य है। किसी समाज में कोई बुराई आम होकर रीति रिवाज का रूप धारण कर ले तो उसके सुधार में क्या–क्या कठिनाईयां होती हैं और किस किस तरह विरोध का सामना होता है और कैसी–कैसी तोहमतो और लांछनों का साबिक़ा पड़ता है किसी सुधार सेवा करने वाले से पूछिए, किसी सुधार का इरादा करने वाले से पुछिये, फिर वहां की बात क्या कही जाये जहां सभी कुछ बदलना हो। असत्य, विश्वास और बपंश का धर्म बदलवाना हो व्यक्तिगत दोष, समाजी बेढ़ंगेपन नैतिक ग्रन्थियां जो सैकड़ो वर्ष से घुट्टी में पड़ी हों सबको हटवा कर बिल्कुल उनकी विपरीत स्थिति को पनपना हो तो ज़रा सोचिए कि एक व्यक्ति चाहे कितनी ही दृढ़ प्रतिज्ञ और उच्च कोटि का साहसी हो, अमली क़दम उठाना तो दूर की चीज़ है इसका इरादा भी कर सकता है–?

यही कठिन समस्या हुजूर (स०) के सामने थी। इस महिमामयी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कितनी ऊंची और कितनी महिमामयी कुर्बानियों की ज़रूरत हो सकती है यह खुली हुयी बात है। इसलिए इस्लाम का इतिहास बलिदानों के इतिहास, कुर्बानियों की तारीख में बदल गया है। ''सुहैब रूमी'', ''बिलाल हबशी'', जनाब ''अम्मार यासिर'' जनाब यासिर और इस तरह के वो सज्जन जिनको किसी बलशाली क़बीले की पुश्तपनाह हासिल न थी अधिक दबाव में रहे। तीन साल तक घाटी में क़ैद रहना और पूरे नगर द्वारा असहयोग, बाईकाट, यह कोई मामूली मुसीबत है। उस वक़्त ऊंट और घोड़े के सिवा यात्रा के लिए कोई सवारी नहीं, मक्के से हबश तक नगर त्याग यात्रा, (हिजरत) करना, जन साधरण की हिम्मत का काम न था। अपना सब कुछ छोड़ कर मदीने की ओर (हिजरत) और उसके बाद की लगातार कुर्बानियों का फल मक्के की विजय के रूप में सामने आया जिसका वर्णन कुर्आन मजीद के सूरे अल–नस्र में इन शब्दों में हो रहा है।

''ऐ रसूल ! जब खुदा की मदद आ पहुंचेगी और फत्हे–ए–मक्का हो जायेगी और तुम लोगों को देखोगे कि लोग समूह–समूह खुदा के दीन में प्रवेश कर रहे हैं तो तुम अपने पालने वाले की प्रशंसा के साथ स्तुति करना और उसी से मुक्ति की प्रार्थना करना और बेशक वह बड़ा क्षमादानी है।''

इसलाम का दामन फैला, कुछ दीन को सत्य मान कर, कुछ इसलाम के मुकाबले सफल होने से निराश होकर, और कुछ हवा का रूख देखकर मुसलमान हो गये। अब हुजूर (स०) को इन्कार करने वालों से अधिक तथा कथित मुसलमानों के हाथों कष्ट और कठिनाई का सामना करना था। अभी वह लोग ग़ोल के ग़ोल इस्लाम में प्रविष्ट हुए थे, इस्लाम के यथार्थ को समझने भी न पाये थे, इस्लाम का ठीक अभिप्राय उनके मानस पटल पर जमा भी न था कि हुजूर (स०) के निधन की विपदा बिजली बन कर मुसलमानों पर गिरी। पैग़म्बर (स०) की वफ़ात से कपटाचारियों की हिम्मतें बढ़ गयीं, इस्लाम के प्रचार प्रसार से जिनके हित प्रभावित हुए थे, इस्लाम के टकराने के कारण जिनके वाली–वारिस और कलेजे के टुकड़े तलवार के घाट उतरते थे उन सब के बदले की भावना का निशाना हुजूर (स०) के अहले बैत (परिजन) बन गये। बनी उमैया का वह क़बीला जो इस्लाम के प्रचार प्रसार में सबसे बड़ी रूकावट था, इस्लाम की मुखालिफत में, विरोध में सबसे आगे–आगे सबसे पेश–पेश था और इस्लाम की कामयाबी के चलते अपनी महत्वता खो बैठा था और सत्ता शक्ति हाथ से निकल चुकी थी, उसको शाम सरीखे उर्वरा–प्राप्त हुकूमत का फरमान देकर दोबारा शक्ति पाने का अवसर दे दिया गया।

अब हुज़ूर (स०) के अहले–ए–बैत (अ०) थे और इस्लाम को बचाने के लिए कुर्बानियों का न टूटने वाला सिलसिला।

हज़रत अमीरूल मोमिनीन (अ०) की शहादत के बाद तो जैसे इस्लामी राज्य की समुची सत्ता ही बनी उमैया को हस्तांतरित हो गयी। लेकिन ग़नीमत था कि अभी इस्लाम के प्रत्यक्ष पक्ष का, जाहिरी रूप का कुछ न कुछ सम्मान किया जाता था और इस्लामी प्रतीकों को मस्लहत से ही सही परन्तु महत्वता दी जाती थी। लेकिन सन 60 हिज्री में जब इस्लामी सलतनत यज़ीद के हाथों में आयी तो फिर हर नक़ाब, प्रत्येक आवरण को तार–तार कर दिया और इस्लामी क्रान्ति के विरूद्ध प्रतिक्रान्ति की तैय्यारी शुरू कर दी, शायद अल्लामा ''इकबाल'' ने इन्हीं परिस्थियों का चित्रण अपने शेअर में किया होः–

किसे खबर थी लेकर चिराग़े मुस्तफवी
जहां में आग लगाती फिरेगी बू लहबी

वह सत्ता और वह शक्ति जो इस्लाम के नाम पर हथियाई गयी थी, वह इस्लाम की सूरत विकृत करने के लिये काम में लायी जाने लगी। प्रयत्न यह थे कि इस्लाम के पर्दे में ''जाहिली'' युग को पल्टा लाया जाये, ऊपरी भूषा इस्लाम की रहे काया और आत्मा इन्कार और कपटाचार की हो।

हुज़ूर (स०) ने जब ''तौहीद'' का पर्चम, एकेश्वरवाद की ध्वजा ऊंची की तो छिटकी हुयी ताक़तों से मुकाबला था, समूचा अरब संसार कबीलों में बंटा हुआ था। लेकिन ''लेकिन रसूल का नवासा'' जब इस्लाम बचाने के लिए उठा तो असंगठित कबीले नहीं एक संगठित राज्य था, जिसके खज़ाने सोने चांदी से लबालब थे, हजारों किलोमीटरों में सलतनत की सीमांए ईराक़, ईरान शाम, हिजाज, मिस्र, यमन को लपेटे हुये थी। सुसंगठित सेना थी, जिसने रोम और ईरान के महान सम्राज्य के पर्खचे उड़ा दिये थे। खुली हुयी बात है कि काम अत्यन्त कठिन और उद्देश्य अत्यन्त दुर्लभ था। वह सामान्य नियम अपनी जगह सर्वमान्य है कि उद्देश्य जितना ऊंचा होता है उसी अनुपात में जबर्दस्त कुर्बानियां दरकार होती हैं, इसीलिए इमाम हुसैन (अ०) ने इस्लाम के जीवन के लिए ऐसी कुर्बानियों का इंतिजाम फरमाया कि जो मानव सोचों से परे थी। जनाब आदम (अ०) से लेकर कर्बला की घटना तक जो व्यक्तिगत कुर्बानियां भी जो कभी इससे पहले सामने नहीं आयी थीं एक ही मैदान में पेशकर दीं, यहां तक कि कर्बला अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध और इस्लाम की सुरक्षा के लिए एक प्रतीक बन गयी इसी प्रतीक को उजागर करने के लिए मौलाना मो० अली ''जौहर'' ने लाजवाब शेअर कहा हैः–

कत्ले हुसैन अस्ल में मर्गे यज़ीद है
इस्लाम ज़िन्दा होता है हर कर्बला के बाद

शायद मतलब यह है कि यह कर्बला की ही किरणें हैं जो इस्लाम की सुरक्षा और दीन को शक्तिशाली बनाने के लिए बलिदान भाव उभारती रहती है। और इन्हीं माअनों में ईरान की इस्लामी क्रान्ति का स्वाभाव बन गया कि ''प्रत्येक दिन मुहर्रम की दसवीं और प्रत्येक भूमि कर्बला हैं'' अर्थात एक मुसलमान को नित्य चाहे वह किसी भू भाग में हो, हर जुल्म ओर जियादती से टकराने और इस्लाम के जीवन के लिये बड़े से बड़े बलिदान के लिये तत्पर रहना चाहिए क्योंकि

सतीज़ाकार रहा है अज़ल से ता इमरोज़
चिराग़े मुस्तफवी से शरारे बू लहबी

सन 60 की दसवीं मुहर्रम और कर्बला की धरती पर सत्य, असत्य का टकराव समाप्त नहीं हो गया, यह जंग आज भी जारी है और हर ईमान लाने वाले के दिल में आज भी कर्बला वालों की बलिदान भावना जीवित रहना चाहिए। यह कर्बला की घटना की अनवरत चर्चा ही का न्योछावर है कि ईरान और लेबनान में वह लोग चकित कारी कुर्बानियां दे रहे हैं जिन्हें सुनकर दुनिया दातों तले उंगली दबाये हुए है। वह शहादत को सआदत (मांगलिकता) और मौत को हयात–ए–जावेद, अमरता का माध्यम समझ कर, मुस्कराते–हंसते, बमों, और मीज़ाइलों को सीने से लगाते हैं, हंसी–खुशी टैंको के नीचे लेट जाते हैं लगभग पूरी दुनिया का एकजुट विरोध भी उनके सर को झुकने में असमर्थ है। यह वह लोग हैं जिनके हृदय ईश्वरीय प्रेम से जिन्दा हो गये हैं।



समाचार पत्र

इराक़ में दहशतगर्दी जारी, 40 लोगों की मौत, कई ज़ख़्मी

14 अगस्त को इराक़ में किए जाने वाले हमलों में 40 लोगों की मौत और लगभग बीस ज़ख़्मी हो गये हैं। इराक़ की राजधानी बग़दाद में एक कैफे में किए जाने वाले खुदकश बम हमले में 24 आदमी मारे गये और 18 ज़ख़्मी हो गये। दारूलहुकूमत के शिमाल में एक मण्डी में और जुमा बाज़ार में बम हमलों में 5 आदमी हलाक़ और कई ज़ख़्मी हो गये। बसरा में नाएब सद्र तारिकुल हाशिमी के साबिक़ तरजुमान अब्दुल इलाही काज़िम मुसलह हमले में हलाक हो गये हैं। मुल्क के शिमाली मग़रिबी शहर दयाला में बम हमले के नतीजे में 4 आदमी मारे गये और 20 ज़ख़्मी हो गये हैं। मूसल के मुख़्तलिफ़ मुक़ामात पर हमलों में 3 फ़ौजियों समेत 4 आदमी मारे गये हैं। शहर में फौज की तरफ़ से मारे गये छापों में दहशतगर्दों के एक हेडक्वाटर को क़ब्ज़े में ले लिया गया है। छापे में 2 दहशतगर्द और 4 को हिरासत में ले लिया गया है।

ईरान, दुश्मन का मुक़ाबला करने को तैयार

इस्लामी जम्हूरिया ईरान के वज़ीरे दफ़ाअ जनरल अहमद वहीदी ने कहा है कि वज़रारत देफ़ाअ दुश्मन का मुक़ाबला करनें में Front line में मौजूद है। जनरल अहमद वहीदी ने वज़रारते दफ़ाअ के कारकुनों से अलविदाई तक़रीब में कहा कि आज ईरान की वज़रारते दफ़ाअ को इलाके और आलमी सतह पर जो बलन्दी हासिल है वो तो कारकुनों की ज़हमतों का नतीजा है। उन्होंने कहा कि खुदा की राह में जिहाद करने में सुस्ती, टाल मटोल और समय बेकार करने की कोई गुन्जाइश नहीं है और वज़राते दफ़ाअ हमा गीर, भरपूर और अन्थक कोशिश करने पर यक़ीन रखती है। उन्होंने कहा कि दुनिया में कोई भी सक़ाफ़त व तहज़ीब, अहलेबैत अलैहिमुस्सलाम की तहज़ीब से अच्छी नहीं है।

इन्हेदामे जन्नतुल बक़ीअ पर एहतेजाज

16 अगस्त 2013 को बाद नमाज़ जुमा मदीना-ए-मुनव्वरा में वाक़े मुहम्मद स. की बेटी जनाब फ़ातेमा ज़हरा और दीगर मासूमीन अ. के रौज़ों को सऊदी हुकूमत के द्वारा गिराए जाने को लेकर एहतेजाजी जुलूस बड़े इमामबाड़े से छोटे इमामबाड़े तक निकाला गया। इस जुलूस में बड़ी संख्या में मोमिनीन ने शिर्कत की और सऊदी हुकूमत मुरादाबाद के नारे लगाए।

इस मौक़े पर क़ायदे मिल्लत मौलाना कल्बे जवाद साहब ने अपने भाषण में कहा कि सऊदी अरब, अमरीका और इस्राईल की मदद से जो हालात पाकिस्तान में बना चुका है वही हालात वो हिन्दुस्तान में भी बनाने की कोशिश कर रहा है जिसकी मिसाल लखनऊ में 21 रमज़ान को अज़ाई जुलूस पर हमला है। जुलूस में लोग अपने अपने हाथों में अमरीका मुर्दाबाद, इस्राईल मुर्दाबाद, सऊदी हुकूमत मुर्दाबाद लिखी हुई तख़्तियां और बैनर्स लिए हुए थे।

ज़रूरत पड़ने पर शाम जाकर लड़ेंगे : सै0 हसन नसरूल्लाह

लब्नान में हिज़्बुल्लाह के सरबराह सै० हसन नसरूल्लाह ने शामी इक़्तेदार की हिमायत का एलान किया है। हुज्जतुल इस्लाम सै० हसन नसरूल्लाह ने कहा है कि शाम की हुमूमत के कहने पर हमारी तनज़ीम के रूक्न शाम जाकर जंग में हिस्सा लेंगे। नसरूल्लाह ने लब्नान में दो रोज़ पहले होने वाले कार बम हमले की ज़िम्मेदारी मुख़ालिफ गिरोहों पर डाली। नसरूल्लाह ने शाम में मौजूद बाज़ पोशीदा अनासिर की तादाद के बारे में ख़ामोशी अख़्तियार करते हुए कहा कि ज़रूरत पड़ने पर हम शाम की जंग में हिस्सा ले सकते हैं। वाज़ेह रहे कि हिज़बूल्लाह लब्नानी सरहद के क़रीब वाक़े क़सीर और हमस नामी शहरों में असद नवाज़ कुव्वतों की मदद में पेश पेश रही है।

ईरान नारों से पाक ख़ारजा पालिसी का अज़्म

ईरान के नए सद्र जनाब हसन रूहानी ने इस अज़्म का इज़्हार किया है कि वो ख़ारजा पालिसी में नारेबाज़ी से परहेज़ करेंगे। ईरान में शनिवार को एक सभा को सम्बोधिकत करते हुए उन्होंने कहा कि उन्हें सद्र चुने जाने के कारणों में से एक कारण मुल्क की ख़ारजा पालिसी में तब्दीली थी ता हम उसका मतलब ये नहीं है कि ईरान अपने उसूलों से दस्त बरदार हो जाएगा। हसन रूहानी ने ईरान के मग़रिबी देशों के साथ जारी तनाव को कम करने के लिए 'सन्जीदा मज़ाकरात' के अज़्म का इज़्हार किया उन्होंने कहा 'हमारी ख़ारजा पालिसी नारे बाज़ी से मुताअस्सिर होगी लेकिन हम लोग परज़ोर तरीक़े से अपने क़ौमी मफ़ादात का दफ़ाअ करेंगे। हसन रूहानी ने चेतावनी दी कि अगर ख़ारजा पालिसी में कोई ग़लती होती है तो उसका ख़मियाज़ा अवाम को भुगतना पड़ेगा। उन्होंने कहा कि 'हमारे मसाएल के हल के लिए ख़ारजा पालिसी किलीदी हैसियत रखती है।' हसन रूहानी ने 4 अगस्त को अपना पद संभाला और जुमेरात को उनकी अट्ठारह रूक्नी का बैय्यना में से तीन के अलावा तमाम को मन्ज़ूरी मिल गयी।

इल्तेमासे फ़ातेहा ख़्वानी

अफ़सोस सद अफ़सोस कि इदारा के मोहसिन जनाब मिर्ज़ा मुहम्मद आलिम साहब की वालेद-ए-माजेदा मरहूमा हुस्न जहां बिन्ते बाक़र अली ख़ान साहब पत्नी जनाब मिर्ज़ा मुहम्मद अकबर साहब ने 20 अगस्त 2013 को दाई अजल को लब्बैक कहा। मरहूमा करबला वालों की सच्ची शैदाई थीं। उनकी तदफ़ीन 20 अगस्त को ही कर्बलाए तालकटोरा, लखनऊ में हुई। इदारा मरहूमा के पिस्रान, बल्कि जुम्ला अइज़्ज़ा व अक़ारिब को ताज़ियत पेश करता है बिल्खुसूस दुआ है कि अल्लाह तआला बतुफ़ैल मुहम्मद व आले मुहम्मद जनाब मिर्ज़ा मुहम्मद आलिम साहब को सब्र करने की तौफ़ीक़ मरहमत फ़रमाए और मरहूमा को जवारे मासूमीन अ. में जगह इनायत फ़रमाए। तमाम मोमिनीन से गुज़ारिश है कि एक बार सूरह-ए-हम्द और तीन बार सूरह-ए-तौहीद की तिलावत फ़रमाकर मरहूमा हुस्न जहां बिन्ते बाक़र अली ख़ान साहब की रूह को ईसाल फ़रमाएं।

मस्जिदे अक़्सा में मअबद के क़याम की सहयूनी साज़िश

मुसलमानों के क़िब्ल-ए-अव्वल में इस्राईली हुकूमत और इन्तेहा पसन्द यहूदियों की मिली भगत से एक मअबद के क़याम की ख़बरें इन दिनों तेज़ी से फैल रही है। फ़िलिस्तीनी मुक़द्दस मुक़ामात के ख़िलाफ़ सहयूनी साज़िशों का पर्दा फ़ाश करने में मसरूफ़ तनज़ीम ''अक़्सा फ़ाउण्डेशन एण्ड ट्रस्ट'' ने क़िब्ल-ए-अव्वल में यहूदी मअबद के क़याम की साज़िश के कुछ मज़ीद इन्केशाफ़ात किए हैं। अक़्सा फ़ाउण्डेशन की जानिब से जारी एक बयान में बताया गया है कि हाल ही में इस्राईल ने जिस इन्तेहा पसन्द गिरोह को मस्जिदे अक़्सा में मअबद तामीर करने का सरकारी सर्टिफिकेट दिया था वो इस्राईल में मौजूद तमाम यहूदी मज़हबी पेशवाओं और मज़हबी फ़िरक़ों के उस साज़िश में हम ख़्याल बनाने के लिए कोशां है। गोकि ''रबानीम'' नामी इस तनज़ीम में भी कई यहूदी रबी शामिल हैं वो इस ख़तरनाक साज़िश को अमली जामा पहनाने के लिए तमाम यहूदी मज़हबी गिरोहों की हिमायत के हुसूल के लिए कोशिश कर रहे हैं। रबानीम ने अपने साज़िशी मन्सूबे का Idea दूसरे गरोहों और मज़हबी पेशवाओं के सामने भी रख दिया है।

अक़्सा फ़ाउण्डेशन ने मस्जिदे अक़्सा के उस मुक़ाम का नक़्शा भी जारी किया है जहां यहूदी रबी एक मअबद के क़याम के लिए तैयारी कर रहे हैं। ये जगह मस्जिदे अक्सा के जुनूब में मश्रिकी सिम्त में मुसल्ला मरवानी के दाख़िली रास्ते पर वाक़े है, जो मस्जिदे अक़्सा ही का हिस्सा समझा जाता है। अक़्सा फ़ाउण्डेशन के Co-ordinator महमूद अबू अता ने भी सहयूनी साज़िशी मन्सूबों की तफ़सीलात बताई। उन्होंने कहा कि इस्राईल ने मस्जिद अक़्सा की आराज़ी पर यहूदियों को एक मअबद तामीर करने की बाज़ाब्ता तौर पर मन्ज़ूरी दी है। उन्होंने कहा कि इस्राईली हुकूमत ने इस साज़िशी स्कीम की मन्ज़ूरी एक ऐसे वक़्त में दी है जब फ़िलिस्तीनी और पूरी दुनिया के मुसलमान सानेह-ए-मस्जिदे अक़्सा की 44 वीं याद की तक़रीबात मना रहे थे। चव्वालीस साल पहले एक इन्तेहा पसन्द यहूदी ने अक़्सा को नज़्रे आतिश करने की साज़िश की थी जो नाकाम हो गयी थी। ये वाक़ेया भी इसी महीने में पेश आया था और अब यहूदी मअबद की तामीर की मन्ज़ूरी भी इसी महीने में दी गयी है। महमूद अबू अता का कहना था कि जो इन्तेहा पसन्द यहूदी मस्जिदे अक़्सा की ज़मीन पर मअबद की तामीर में सरगर्म अमल हैं वो मस्जिदे अक़्सा की जगह हैकल सुलैमानी की तामीर की मुहिम में भी पेश पेश रहे हैं।